इस त्रासदी को हमने रचा

डॉ. अनिल कुमार गुप्ता
निदेशक, वाडिया
हिमालयन भू-विज्ञान
संस्थान, देहरादून

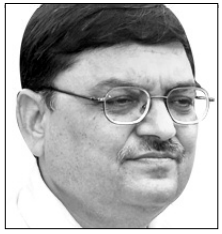

एक सामान्य सी बात है, जो अब लोगों को समझनी ही होगी। मिट्टी की अपनी सीमा है। जो मिट्टी सौ लोगों का बोझ सहने की क्षमता रखती है, वहां अगर एक हजार से ऊपर लोगों का जमावड़ा हो जाए, तो साफ है कि वह आपदा की वजह बनेगा ही।

उत्तराखंड प्राकृतिक आपदा से दो-चार है। बादल फटना इसके पीछे बड़ी वजह रही है। गहन घाटी क्षेत्र में जहां एयरोसोल (वायु में मौजूद कण) और नमी मिलकर बादल बनाते हैं, चारों ओर पहाड़ों के होने की वजह से इन्हें बहुत ऊपर जाने का मौका नहीं मिलता और इसका नतीजा बादल फटने के रूप में सामने आता है। यही केदार घाटी में भी हुआ। रामबाड़ा में बड़ा नुकसान इसी वजह से झेलना पड़ा। भारी बारिश और भू-स्खलन सैकड़ों की जान जाने की वजह बने। गौरीकुंड तबाह हो गया। अभी भी राहत कार्य चल रहा है।

प्रकृति का रुख अनिश्चित होता है। बारिश को लें। इसकी तीव्रता, मात्रा को मापा जरूर जा सकता है, लेकिन इसे नियंत्रित किए जा सकने का कोई उपकरण अभी तक नहीं बना है। न ही मानसून की रफ्तार को नियंत्रित किया जा सकता है। हिमालय, जो सबसे नया पहाड़ माना जाता है, वह भी लाखों वर्ष पुराना है। जितना पुराना हिमालय है, उतना ही पुराना मानसून भी। लेसर हिमालयन रेंज में यह तीव्रता से प्रवेश करता है। इंडियन मीटीरियोलॉजिकल डिपार्टमेंट (आईएमडी) 16 पैरामीटर्स के आधार पर मानसून का अनुमान लगाता है और उसकी घोषणा करता है। उसका अनुमान यही था कि इस बार मानसून सामान्य रहने वाला है। यह अलबत्ता कुछ दिन पहले आ गया। इसके पहले आ जाने से जरूर थोड़ा फर्क पड़ा। लेकिन राज्य में जो आपदा आई है, उसके पीछे पर्यावरणीय कारकों के साथ ही मानवीय कारकों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह पर्यावरणीय कारकों से भी अधिक अहम हैं। लोगों ने निजी फायदे के लिए नदियों के किनारों तक को नहीं छोड़ा। यहां भी अपने घर, व्यवसाय खड़े कर लिए। बरसात आई तो अपने साथ पुश्तों पर बने-खड़े इन सब निर्माणों को बहा ले गई। पुल बह गए। धन-जन का भारी नुकसान हुआ। एक सामान्य सी बात है, जो अब लोगों को समझनी ही होगी। मिट्टी की अपनी सीमा है। जो मिट्टी सौ लोगों का बोझ सहने की क्षमता रखती है, वहां अगर एक हजार से ऊपर लोगों का जमावड़ा हो जाए तो साफ है कि वह आपदा की वजह बनेगा ही। केदारनाथ समेत तमाम धामों में

आने वाले तीर्थयात्रियों की संख्या तो बढ़ी है, लेकिन न तो भू-संरचना बदली है, न ही भू-प्रकृति। लोगों ने भू-उपयोग निजी लाभ के लिए किया। पर्यावरणीय लिहाज से भी यह ठीक नहीं है। प्रकृति हल्की-फुल्की घटनाओं से इशारा भी देती है, लेकिन फिर भी उससे मानवीय छेड़छाड़ कम नहीं हो रही है। हालत यह है कि लोगों ने नदियों के किनारे पर आशियाने बना लिए हैं। देहरादून शहर में स्थित शहंशाही आश्रम के पीछे नदी क्षेत्र का ही उदाहरण लें। यह जगह मेन बाउंड्री थ्रस्ट (एमबीटी) के उस हिस्से पर है, जो सबसे ज्यादा सक्रिय है। इसके सेंटर यानी केंद्र पर ही सबसे ज्यादा बसावट है। कभी कोई आपदा आती है तो सबसे ज्यादा नुकसान इसी जगह पर संभावित है। अब इसमें किसका दोष है? यहां बसावट की इजाजत आखिर किसने दी? ऐसे में यहां आपदा के लिए निश्चित रूप से मानवीय कारक ही सबसे ज्यादा जिम्मेदार होंगे।

जरूरत इस बात की है कि आपदा से सचेत हुआ जाए। राहत कार्य से निवृत्त होने के पश्चात अब भविष्य के लिए गंभीरता से कदम उठाए जाएं। प्रदेश के अधिक भीड़-भाड़ वाले विभिन्न शहरों का वैज्ञानिक अध्ययन कराया जाए। खासतौर पर पहाड़ पर बसे शहरों का। आपदा संभावित क्षेत्र चिन्हित किए जाएं। कई स्थान ऐसे हैं, जहां भू-स्खलन बड़ी मात्रा में होता है। उत्तराखंड में कुछ शैलो जोन हैं, जहां बादल फटने की आशंका ज्यादा रहती है। राज्य के उत्तरकाशी, चमोली आदि जिलों में ऐसे कई स्थान हैं। चिन्हीकरण के आधार पर इन क्षेत्रों में जो लोग बसे हैं उन्हें शिफ्ट करने की कार्रवाई की जाए और दूसरी जगह बसाया जाए। पहाड़ी क्षेत्रों में जो भी निर्माण कार्य हों, उनके लिए अलग से नीति निर्धारित की जाए। इस संबंध में जो नियम-कानून हों उनका सख्ती से पालन कराया जाए। प्राकृतिक आपदाओं को रोक पाना तो अभी इंसान के हाथ में नहीं है, लेकिन नुकसान कम-से-कम हो, इसकी रणनीति बनाकर काम जरूर किया जा सकता है। इस कार्य में सभी वैज्ञानिक संस्थाएं संयुक्त रूप से भूमिका अदा कर सकती हैं। आपदा न्यूनीकरण के लिए भी पहले से ही कार्य शुरू किया जाए। आपदा प्रबंधन का और उससे बचने का यही तरीका होगा।